Advances in Economics and Business Management (AEBM)
p-ISSN: 2394-1545; e-ISSN: 2394-1553; Volume 6, Issue 5; July-September, 2019, pp. 501-510
© Krishi Sanskriti Publications
http://www.krishisanskriti.org/Publication.html

औद्योगिक महिला श्रमिकों की दिशा

Direction of Industrial Women Workers

डा. मुन्नी चौधरी
हिंन्दी विभाग, सहायक प्रोफेसर, दयाल सिंह सांध्य कालेज

सार-संक्षेप - औद्योगिक महिला श्रमिकों ने अपने सौ साल के संघर्समय इतिहास में बहुत कुछ पाया है और बहुत कुछ छीनकर हासिल किया है. बावजूद इसके उसके हाथ बहुत कुछ अभी भी लगा नहीं है. उसे उतनी तो मिलनी ही चाहिए, जिसकी वह अधिकारिणी है. वह तो दुनिया के सम्पूर्ण पुरुषों की जननी है. उसे तो मानवी सभ्यता-संस्कृति का सिरमौर होना चाहिए. जिन संस्कृतियों ने उसे यह अधिकार दिया वह देश-समाज-संस्कृति दुनिया का सिरमौर बन गया है - जग जाहिर है. वैसे, भारतीय महिला श्रमिकों ने अपनी संततियों को अनेक दिशाएं दी हैं. फिर भी उन्हें वह ऊंचाई नहीं मिल पाया है. कुल मिलाकर, उनकी दिशा 'आवां' के ताप से तपकर निकली, 'धार' की धार पर पैनी हुई महिला, 'सीता' की आधुनिक सीता और राधा यंग बन जाने में ही दिखाई पड़ती है.

भूमिका - भारतीय इतिहास में बौद्ध शासनकाल की समाप्ति के बाद यूरोपीयनों का आगमन एक नयी परिघटना है, जो एक बार फिर भारतीयों को सभ्य, लोकतांत्रिक और आधुनिक दुनिया में ले जाने को संकल्पित दिखता है. हम आज जिस ऊंचाई को हासिल कर पाये हैं, उसका श्रेय यूरोपीयनों को दिये बिना बात नहीं बनेगी. बावजूद इसके हमारी औद्योगिक महिला श्रमिकों को अपने अधिकार हासिल करने के लिए एड़ी-चोटी का संघर्ष करना पड़ा है. देश की केंद्रिय सरकारों ने इन्हें बहुत कुछ दिया है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता. हम यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और कुछ एशियाई देशों की बराबरी तो नहीं कर पाये लेकिन हमने उनकी बेहतरी को अपनाया जरूर है - चाहे वह वैचारिक ही क्यों न हो. मैंने यहां हिंदी के कुछ प्रमुख औद्योगिक श्रमिक आधारित उपन्यासों को इस शोध का आधार बनाया है. उनके अध्ययनों से जो निष्कर्ष निकले हैं वे उल्लेखनीय हैं. वे रास्ते, जिसे संघर्ष के साथिनों ने दिया है - औद्योगिक महिला श्रमिकों के लिए अनुकरणीय हैं.

दिशा - महिला श्रमिकों की दशा की पड़ताल से साफ जाहिर हो जाता है कि वे सुरक्षित, सम्मानित और संघर्ष से मुक्त नहीं हो पायी हैं. आज भी वे पुरुष, धर्म और समाज की गुलाम हैं. उन्हें एक मुकम्मल दिशा चाहिए, जिस पर चलकर वे लम्बे समय तक अपने और अपनी संततियों को खुशहाल रख सकें या अपनी दुर्वस्था से बाहर निकल कर समोन्नति को हासिल कर सकें. मेरा मानना है कि स्त्री सबकी मदर है.

महिलाओं का त्याग और बलिदान उन्हें पुरुष से ऊंचा और श्रेष्ठ साबित कराता है. 'धार' की मैना इसे साबित कर दिखा देती है. दलित-आदिवासी महिलाएं साक्षर न होकर भी शिक्षित हैं. वे पुरुषों से कई गुणा श्रेष्ठ हैं. मैना अपने साथियों से मिलकर जन-खदान की शुरुआत की थी, जहां इस वर्ग के लिए सब कुछ था - शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, कला, सम्मान, स्वतंत्रता, बराबरी, भाईचारा, राशन, पानी, यातायात की सुविधा, पक्का

आधुनिक प्रबंध. लेकिन यह लम्बे समय तक चल नहीं पाया, बल्कि लोगों ने चलने नहीं दिया. माफिया, पुलिस और सरकार की मिली-जुली प्रयासों का नतीजा हुआ कि जन-खदान को बुलडोजर से ध्वस्त करवा दिया गया. यहां तक कि क्रांति की धार मैना को भी बुलडोजर से रौंद दिया गया. सारे मजदूरों को अपराधी करार देकर उन्हें जेलों में ठूंस दिया गया और उन पर वर्षों मुकदमा चलाया गया. बहुत सारे मजदूर तो जेल से बाहल नहीं निकल पाये, क्योंकि उनके पास केस लड़ने के उचित साधन नहीं थे. मजदूरों ने जो आर्थिक समृद्धि का बिरवा बोया था, उसे सारे अपराधी मिलकर बिरवा को ही मिटा डालते हैं. श्रमिकों ने जो समृद्धि का सपना देखा था, उसे भेदभावपूर्ण-व्यवस्था के समर्थकों ने जड़-मूल से समाप्त कर दिया. वह स्त्री जो जड़ पुरुष-व्यवस्था को कड़ी चुनौती देकर खड़ी होती है, उसे समाप्त कर उसके 'साथी' और पुरुष जीत जाते हैं. बांसगड़ा के श्रमिक जिस अंधकार को चीरकर निकले थे, उसे व्यवस्था के समर्थक सदा के लिए मिटा देते हैं. इन श्रमिकों को भारत में किसी सत्ता-व्यवस्था का सहयोग नहीं मिला. मैना का रास्ता दलित-आदिवासी श्रमिकों और वह भी स्त्री श्रमिकों के लिए एक शानदार दिशा है. तमाम विरोधों के बावजूद उसने दुनिया को अपनी प्रतिभा दिखा ही दी. भारतीय शोषितों को केवल समान अवसर चाहिए. वे दुनिया के सबसे प्रतिभाशाली लोग हैं, प्रतिभा उनके नस-नस में समायी हुई है. मैना के कार्यों का विश्लेषण करते हुए शर्मा उससे कहता है, "पार्टी चाहे गलत कहे या सही, सरकार चाहे स्वीकारे चाहे नहीं; हम मर जाएं या मिट जाएं; जनखदान तक को चाहे कोई वहशी मटियामेट कर दे लेकिन लोगों को यह सोचने का मुद्दा तो हम दे ही जायेंगे कि एक दिन ऐसा भी आया था, जब मजदूरों ने खुद सत्ता संभाली थी, जब लुटेरों तक की जान को खतरा महसूस होने लगा था, जिन्होंने वार किया, उन्होंने मुंह की खायी, न कोई मालिक था, न कोई सूदखोर, कि एक दिन ऐसा आश्रय यहां था, जहां इलाके का कोई भी रोजी मांगने आया, और उसे काम मिला, कोई दवा-दारू मांगने आया और चंगा होकर गया, ...कोई ऐसी चीज जो उनकी अपनी थी"[1]. जनखदान और उसके संचालन-प्रबंधन का विचार अशिक्षित दलित-आदिवासी स्त्री मैना का विचार है. दुखद बात यही है कि इस जैसे लोगों को हमारे देश में 'गंवार' जैसे शब्दों से संबोधित किया जाता है.

अपने लोगों की बेहतरी के लिए कुर्बान होने की दृढ़-इच्छाशक्ति कोई मैना से सीखे. मैना जैसे लोग, परिवार और समाज की हस्ती मिटाई नहीं जा सकती और न मिटेगी. दुनिया की ऐसी कोई ताकत नहीं, जो इन्हें मिटा सके. इनके पास वो सब कुछ है, जिसके बल पर दुनिया के दूसरे देशों के लोग आसमान की बुलंदियां छू रहे हैं. फ्रांज फैनन की तर्ज पर मैं कह सकता हूं कि ये इस देश के सर्वाधिक अभागे लोग हैं. इस देश की मिट्टी में ये हर जगह दफन हैं और उनकी संततियां आज भी अनवरत संघर्षरत हैं. ये वास्तविक 'सर्वाइवल आफ दि फिटेस्ट' हैं. इन्हें उम्मीद है कि एक दिन उनका फिर जरूर आयेगा. ये वो हस्ती हैं, जो मिटती नहीं और न मिटाई जायेंगी. मैना के ये उद्गार उसके ह्रदय के तल से निकली हुई अमर आशीष है, "हम भौत-ई कमजोर आदमी है मामा, भौत-ई कमजोर...' भींगी रतनारी आंखों से असहायता में तिरोहित होते माहौल को एक नजर देखते हुए बोलती गई, 'थोड़ा-थोड़ा चल के बैठ जाना पड़ता. कहां जाएं, किधर जाएं - कभी-कभी कुछ सूझता-ई नईं. चारों तरफ से रास्ता बंद है - मां, बाप, मर्द, बेटा-बेटी, भाई-देश-मुलुक सब! हम का करें मामा, हम अपना मन से हार गये. अन्दर-ई-अन्दर कुछ काटता है. हम जानता कि हमरा नुकसान होगा, लेकिन हमसे बरदास-ई नईं होता"[2]. उसका मन होता है कि वह बर्फ की तरह बिछ जाय उनके पांवों के तले, वे पांव, जिनके नीचे-आगे तपती हुई जमीन है. और, मैना सचमुच बिछ ही तो जाती है.

मैना का जीवन-चरित करोड़ों महिला श्रमिकों की पथ-प्रदर्शिका है. वह खुद एक दिशा बन गई है. वह एक लड़ाकू दलित-आदिवासी औरत है, जो पुलिस, गुंडों, ठेकेदारों तथा अपने गांव-घर के मुखियाओं के खिलाफ लड़ती है और सभी गांव वासियों को भी लड़ने के लिए संगठित करती है. वह निडर है, मेहनती है, खरी बातें बोलती है. उसे दुखों ने सचमुच मांजा है. इस स्त्री का चरित्र प्रेम और वर्ग-संघर्ष की आंच में तपकर निखरा है. वह अपने जीवन में प्रेम और वर्ग-संघर्ष दोनों को एक साथ मिलाकर रखने की कोशिश करती है, क्योंकि इनकी आवश्यकता श्रमिक जीवन में सदा बनी रहती है. मैना बहुत ही सजग और जुझारू महिला है. उसके जीवन का प्रेम-पक्ष महान बन गया है - प्रेम की एकनिष्ठता में और प्रेम की स्वतंत्रता में. आदिवासी समाज में प्रेम करने की पूरी स्वतंत्रता होती है. वहां जीवन-साथी चुनने की भी स्वतंत्रता होती है और मैना यही करती है. प्रेम करना और पति चुनना उसकी मजबूरी नहीं है, बल्कि स्त्री की स्वतंत्रता का सूचक है. उसका पहला पति और प्रेमी फोंकल संघर्ष के दौरान कम्पनी और माफिया का दलाल बन जाता है, तो वह उसे छोड़ देती है, उसका श्राद्ध कर देती है. जेलर के बलात्कार से पैदा हुए बच्चे को समाज के सामने पालने के लिए वह मंगर को अपना नया पति बनाती है. जब वह भी दलाल निकल जाता है, तो वह उसे भी छोड़ देती है. कहती है, "जब दलाल का ही हाथ पकड़ना था तो फोंकल क्या खराब था तुमसे[3]. प्रेम की निष्ठा और प्रेम की स्वतंत्रता - इन दोनों की द्वंद्वात्मक एकता ही उसके प्रेम-पक्ष की महानता है. दूसरी बात, यह प्रेम उसके संघर्ष से जुड़ा हुआ है. उल्लेखनीय है कि उसे प्रेमी चाहिए केवल प्रेम करने के लिए नहीं, बल्कि संघर्ष में साथ देने के लिए भी. वह प्रेमी को संघर्ष के साथी के रूप में पाना चाहती है. उसका प्रेम और संघर्ष दोनों अतुलनीय है. अपने संगठन में उसने अन्याय और शोषण के खिलाफ लड़ने का जो पाठ पढ़ा, उसे उसने सिर्फ बौद्धिक स्तर पर ग्रहण नहीं किया, बल्कि अपने जीवन में हमेशा के लिए उतार भी लिया, व्यक्तित्व का अंग बना लिया. दरअसल, संघर्ष ही उसके जीवन की धार है. उसमें विचारों और भावनाओँ की दृष्टि से एक प्रौढ़ता दिखलाई पड़ती है. वह जानती है कि संघर्ष ही उसके अस्तित्व का प्राण है. जीने की ललक होने के कारण और अन्याय के प्रति मन में स्वाभाविक प्रचंड विरोध-भाव होने के कारण वह हमेशा उत्साहपूर्वक संघर्ष करती है. श्रमिकों का जीवन सुखमय हो - यह शुभकामना उसके ह्रदय की गहराई से निकलती है. वह सबका भला चाहती है. सभी को काम दिला देने के बाद खुद आखिर में काम पकड़ती है. सबको खुश देखकर मैना भी खुश होती है. यही गुण मैना को ऊंचा उठाती है. वह सचमुच और वास्तविक साम्यवादी है.

टोनी मोरिसन ने एक जगह लिखा है कि जिस संघर्ष का कोई अंत नहीं है, उस पर ज्यादा देर तक टिके न रहकर अपना रास्ता तुरंत बदल लेना चाहिए. सचमुच यह इंसान की बेहतरी के लिए जरूरी है. मैना की बहन मेरी ईसाई बन अपनी समूल मुक्ति का रास्ता खोज लेती है. यही अन्य श्रमिक नहीं कर पाते, जबकि यही एक मात्र दिशा इन श्रमिकों की दिखाई पड़ती है. मैना का पिता टेंगर हिंदू बन जाता है, लेकिन उसकी उन्नति होने के बजाय अवनति ही होती है. उसकी सारी सम्पत्ति पंडित और माफिया दिकू हड़प जाते हैं. वह बिन दाम स्थायी गुलाम बन जाता है और आखिरकार उसी गुलामी के कारण उसकी मौत भी होती है. मामा के शब्दों में, "बाप तो साधू है, धरमातमा. देखते नईं, ई पूरा जमीन महेंदर बाबू को दान में दे दिया. गोश्त नईं खाता, मछली नईं खाता, दारू नईं छूता, पंडित सीताराम से कंठी लिया है. मां तो गुलगुलिया था, बाप ई गांव का सौंताल है"[4]. दिकुओं ने मिलकर सारे आदिवासियों को मिटाने का जो षड्यंत्र शुरू किया है, वह अब खूब फल-फूल रहा है. आज उनके अस्तित्व पर ही संकट खड़ा हो गया है. एतवा मांझी (समर शेष है - विनोद कुमार) की संतानों को उसके बाप की बर्बादी से सीख लेना चाहिए और हरनाम सिंह जैसे दिकुओं से सावधान हो जाना चाहिए.

भारत में मुक्ति प्राप्त महिलाओं की अपनी जुबानी कथा है 'थेरीगाथा', जहां महिलाएं अपनी स्वतंत्रता की कथा खुद ही कहती हैं. भिक्खुणी सुमंगलमाता उन्हीं में से एक है. वह अपनी व्यथा-स्वतंत्रता बयां करती हई कहती है, "अहो! मैं मुक्त नारी! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है. पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी, आज उससे मुक्त हुई. मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे-छोटे बर्तन. जिनके बीच में मैं मैली-कुचैली बैठती थी, और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से भी तुच्छ समझता था, जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था. अब उस जीवन की आसक्तियों और मलों को मैंने छोड़ दिया. मैं आज वृक्ष-मूलों में ध्यान करती हुई जीवन-यापन करती हूं. अहो! अब मैं कितनी सुखी हूं"[5]. मुक्ति सबका हक है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष. मुक्त व्यक्ति ही मुक्त वातावरण का निर्माण कर सकता है, यही दुनिया की मांग रही है. 'चांडालिका' (रवींद्रनाथ टैगोर) की चांडालिका इसका प्रबल उदाहरण है. अगले जन्म की आस में इस जन्म को बर्बाद कर देना किसी भी तरह बुद्धिमानी नहीं है. चांडालिका जो राह दिखाती है, वह सचमुच बेहतरीन है और करोड़ों शोषितों की पथ-प्रदर्शिका है.

जननी जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है, लेकिन यह भारतीय शोषितों के लिए खोखली साबित हुई है. जिसकी सरजमीं इंसान को सुख, शांति और सम्मान न दे वह किस काम की भला! सन् 1930 के आसपास लिखा गया और प्रकाशित उपन्यास 'बुधुआ की बेटी' जो 1955 में 'मनुष्यानन्द' के नाम से प्रकाशित हुआ - यहां अधिक प्रासंगिक हो उठा है. उपन्यास का भंगी समुदाय इस देश में सदियों से सर्वाधिक उत्पीड़ित और तबाह वर्ग है - उनकी मुक्ति का बीड़ा मनुष्यानन्द नामक अघोड़ी, जो जाति का पंडत है - उठाता है. उसके सारे प्रयास असफल सिद्ध होते हैं. वह लगभग सभी समर्थ व दयार्द्र हिंदुओं से बुधुआ की बेटी रधिया के पालन-पोषण की याचना करता है, लेकिन कोई भी हिंदू इसके लिए तैयार नहीं होता. वे मैला खाने वाले कुत्ते को पाल-पोस सकते हैं, लेकिन एक भंगी की औलाद को नहीं पाल सकते, क्योंकि वह एक नीच जात की बेटी है. इतना ही नहीं, बुधुआ जैसे तमाम बनारस के भंगी हिंदू और मुसलमान दोनों के मल फेंकते हैं और बनारस को तमाम गंदगियों से मुक्त कर साफ-स्वच्छ रखते हैं. गौरतलब है कि उसी बारह-तेरह साल की रधिया भंगन को प्रेम-जाल में फंसाकर उसके अस्तित्व को मिटाने के लिए उच्च कुलों के शोहदों में होड़ लग जाती है. वे शोहदे हिंदू और मुसलमान दोनों हैं. वही दोनों कौमों के लोग भंगी जाति से नफरत करते हैं और उसे 'दुश्मन' मानते हैं. मनुष्यानंद चाहता तो खुद भी बच्ची को पाल-पोस कर बड़ा कर सकता था और मानवता की एक नयी मिसाल पेश कर सकता था, लेकिन वह भी ऐसा नहीं कर पाता. मेरी दृष्टि में, रधिया की जाति और उसके बाप का काम आड़े आता है, जिसे मनुष्यानन्द भी पचा नहीं पाता. जातीय भेदभाव और छुआछूत के सामने सारी मानवता धूल चाट जाती है. तथाकथित मानवता का महान संदेश देने वालों की सारी मानवता खोखली साबित होती है. मनुष्यानंद अपने सारे प्रयास में इसे पूरी तरह जान लेता है. यही कारण है कि भारत में ब्रिटिश जज मि. यंग के आग्रह पर रधिया को अपनी बेटी बना लेने को सहर्ष स्वीकार कर लेता है. अब रधिया ससम्मान मिस राधा यंग बन जाती है और मि. यंग की बेटी बनकर इंग्लैंड में रहने चली जाती है. "उन दोनों ने देखा वे पादरी, वह अंग्रेज, लड़की और भयानक साधु आपस में मिल-जुलकर विदा ले रहे थे. ..... फिर एक पादरी, अंग्रेज और लड़की जिसके साथ एक सुंदर कुत्ता भी था मोटर-बोट पर बैठकर जहाज की ओर बढ़े. थोड़ी देर और - और जहाज ने लंगर उठा दिया. जहाज वाले प्रेमी, डाक पर के प्रेमियों की ओर और डाक वाले जहाज वालों की ओर रूमाल हिला-हिलाकर अपने सजल भाव प्रकट करने लगे"[6]. और वह भारत छोड़ देती है. जिन वजहों से रधिया का जीवन नरक बन जाता है, उन्हीं वजहों को देखकर जयनंदन को 'ऐसी नगरिया में

केहि विधि रहना' लिखना पड़ा होगा. लोटन डोम और उसकी बेटियों के दर्दों को यहां कोई नहीं मिटा सकता, क्योंकि उस परिवार का दुख ईश्वरीय नहीं बल्कि तथाकथित बड़े और इज्जतदार लोगों की देन है.

मनुष्यानन्द जानता है कि ईसाई समुदाय किसी भी तरह का भेदभाव दुनिया के किसी भी व्यक्ति के साथ नहीं करता, इसीलिए वह बच्ची रधिया को बनारस के तत्कालीन पादरी जानसन को सौंप देता है. उनके घर पल-बढ़कर रधिया के व्यक्तित्व में जो बदलाव आता है, वह अविस्मरणीय है. उसके जैसा व्यक्तित्ववान लड़की दूसरी समुदायों में नहीं पाई जाती. पादरी जानसन उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका बपतिस्मा नहीं करते और न उसके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा में कोई कोताही ही बरतते हैं. उसका व्यक्तित्व लोगों को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती है. लोग उसे इज्जत से बुलाते हैं. वह साहसी बन जाती है और अपने स्वविवेक का परिचय बिना किसी डर का देती है. उसको फंसाने वाले शोहदे जैसे ही उसकी तरफ बढ़ते हैं, वह समझ जाती है कि वे उसे फंसाने आये हैं. वह तुरन्त झूले से ही राधेश्याम जी की छाती पर छलांग लगाकर उसे गिरा देती है. बाकी काम उसका कुत्ता कर देता है. धूल-धूसरित शोहदे सिर-पांव लेकर वहां से भाग खड़े होते हैं. उल्लेखनीय है कि उसे ऐसा ईसाईयत ने बनाया है, इसीलिए साहसी है. यदि वह ईसाई संस्कार में रंगी न होती, तो क्या वह साहसी हो पाती? सचमुच नहीं. यह तो ईसाई संस्कार के पश्चाताप की भावना ही थी कि वह अपनी गलती स्वीकारने दौड़ पड़ती है और यही वह मौका है, जिसे शोहदे अपना अवसर बना लेते हैं. जिस समाज में इंसानियत और मानवता को मूर्खता मानी जाती है, वह समाज कितना क्रूर और बर्बर होगा - बनारस के भंगी बखूबी समझते होंगे. यही वे लोग थे जो अंग्रेजों के साथ-साथ भारत से कूच कर इंग्लैंड चले गये थे, जो आज भी लंदन में रहते हैं. इनकी संख्या आज पांच लाख तक पहुंच गई है और वे भारतीय हिंदुओं के द्वारा ही छुआछूत के शिकार हैं. इससे मुक्ति के लिए इंग्लैंड की पार्लियामेंट को अनटचेबिलिटी-निरोधक कानून बनाना पड़ा है. गौरतलब है कि वहां रहने वाले हिंदू शिक्षित और सुखी-संपन्न हैं. फिर भी वे कलंकवत भेदभाव को अपने मन-मानस से मिटा नहीं पाये. यह अभिशापित करोड़ों लोगों के लिए एक सीख है.

भारतीय बड़ी तेजी से माइग्रेट कर रहे हैं और वे उन देशों की रूख कर रहे हैं, जहां सुख, शांति और सम्मान बिना किसी भेदभाव के सबको उपलब्ध है. दूसरे शब्दों में, वे वहां कूच कर रहे हैं जहां समूल उन्नति का रास्ता सबके लिए सुलभ है. मि. यंग की पत्नी भारत आकर 'स्त्री स्वातंत्र्य-समर्थिनी समिति' चलाती है. उसकी समिति में बनारस की सैकड़ों महिलाएं जाती हैं और मिसिज यंग की अगुआई में स्त्री-स्वतंत्रता की गुर सीखती हैं. वह अपनी मंडली को संबोधित करती हुई कहती है, "सभी स्त्रियों को चाहिए कि पुरुषों का ह्रदय अपने पैरों तले दबाकर कुचल दिया करें; जैसे उन्मत्त हाथिनी अपने प्रचंड पैरों के नीचे बताशे को कुचले. यह पुरुष जाति धोखेबाजों, अत्याचारियों और कायरों की जाति है - जो सदा से हम स्त्रियों को फुसला-फुसलाकर नष्ट करती और हमारे प्राणों को घास-भूसे की तरह पशुता से कुचलती आ रही है"[7]. मनुष्यानंद के प्रयास से कुछ भंगी भी सचेत और समझदार हो जाते हैं. उन्हीं सचेत भंगियों में से एक कहता है, "हम अनजान देशों में जाकर और कुली का काम कर रोजी पैदा करेंगे और साफ और ईमानदार और 'पवित्र' - वही पवित्र जो हमें ईश्वर के निकट तक नहीं जाने देते, मानो परमात्मा को उन्होंने अपने ही लिये रिजर्व कर लिया है - रहा करेंगे"[8]. उसी की चरम परीणति है कि बुधुआ की बेटी रधिया से मिस राधा यंग बन सुदूर इंग्लैंड चली जाती है.

महिला श्रमिकाएं जो सचेत और समझदार हो गई हैं, वे अब अपने हक-अधिकार को समझने लगी हैं. इस दृष्टि से 'आवां', 'धार', 'सीता' आदि उपन्यास बहुत महत्वपूर्ण हैं. सीता आधुनिक संघर्षरत महिला है. वह दुखों से

हारती नहीं, बल्कि सीखती है तथा मजबूत और अधिक प्रखर बन जाती है. वह श्रमिकों को धिक्कारती तथा अपने अधिकारों के लिए उनको सचेत करती है. वह अकेली दिकू, पुरुष और शोषकों के खिलाफ लड़ती है और सफलता प्राप्त कर जो दिशा देती है, वह अनुकरणीय है. 'खुदी को कर इतना बुलंद कि खुदा भी तुमसे पूछे, 'ऐ बंदे, तुम्हारी रजा क्या है'! वाकई यह लोकतंत्र में ही संभव है और यह किसी के लिए भी संभव है. सीता एक आदिवासी होकर श्रमिक-नेत्री बन जाती है. यह रास्ता उसने खुद बनाया है. उसका पति यासीन मियां उसकी बढ़ती देखकर खुद को नीचा समझता है और वह उसे तलाक दे देता है. बावजूद इसके वह श्रमिक हितों को लेकर संघर्ष करती है और खुद को सिद्ध कर देती है. "सीता का सिक्का सब मानते. पर कहावत है - घर की मुर्गी दाल बराबर. फिर वह है औरत. मजदूर तो उसका नेतृत्व मान भी रहे थे, पर कार्यकर्ताओं को इसमें अपनी हेठी लगती थी. यूनियन में कई लोग थे जो क्रांति की बात करते थे, पर अपनी संकीर्णताओं और रूढ़िगत मानसिकता की कंज उतार नहीं पाये थे. सीता को ऊपर के नेतृत्व में, बिहार की केंद्रिय कमिटी में तो रख लिया, पर जब यूनियन की केंद्रिय कमिटी के लिए शाखाओं से नाम चुनकर मांगा गया तो किसी भी महिला का नाम चुनकर नहीं भेजा"[9]. स्त्री के सामने पुरुष की संकीर्णता स्पष्ट हो जाती है. सीता वह सब कुछ करती है, जिसे पुरुष अपना अधिकार-क्षेत्र मानता है. सीता हर लड़ाई में आगे रहती. धरना देना हो, घेराव करना हो, हड़ताल की मीटिंग करानी हो, ट्रक रोकने हों, अधिकारियों से बात करनी हो - वह सबसे आगे रहती. उसकी बहादुरी के चर्चे पूरे कोल्ड-फिल्ड में होती. उसने हजारों को स्थायी नौकरी लगवाई, छंटनी के श्रमिकों को फिर नौकरी दिलवाई, पुलिस से लेकर अधिकारियों को पीटी, फब्तियां कसने वालों को भी पीटी, लेकिन पुरुष फिर भी उसको सम्मान न देते. सीता के बोल्ड व्यक्तित्व से उसके आसपास के सारे पुरुष हीन भावना के शिकार हो गये थे. यासीन मियां उसे जीवन भर 'रखनी' मानता रहा. लेकिन सीता ने कभी भी पुरुष और समाज के नियमों को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया. उसने अपने श्रमिक भाई-बहनों को अपना मानकर उनकी सेवा और उन्नति में खुद को होम कर दिया. इस तरह सीता हजारों महिलाओं के लिए प्रेरणा-स्रोत बन जाती है. उसका व्यक्तित्व और कार्य-कलाप लाखों महिलाओं के लिए अनुकरणीय है. इस तरह वह आदिवासी महिलाओं को एक बोल्ड दिशा देती है.

सीता आधुनिक सीता है. यही कारण है कि वह पुरुषों द्वारा बनाये स्त्रियों के नियमों का पालन नहीं करती. वह अन्याय को बर्दाश्त नहीं करती. यासीन के धोखा देने पर उसे और उसकी बीवी को जूतों और घूंसों से जमकर पिटाई करती है. उसके मैटरनिटी बेनिफिट का फार्म मैनेजर द्वारा न भरने और जांच करने की बात पर वह भड़क उठती है. वह टेबल पर टांगी पटकती हुई दहाड़ उठती है तथा अपने तर्कों से सबको निरुत्तर कर देती है, "किस बात की जांच मनीजर साहब? तोरू जोरू के बच्चा जना तो जांच करवाई थी जीएम ने? स्कुलवा में तोर नाम बप्पा से भरा तो मास्टर ने जांच करवाई थी तोरू जोरू की? ये मुंशी बाबू लोग का फार्म भराता है तो कोई जांच करता है? ई दू कानून कैसन? माय ना जानेगी कि बाप के है? बाप साला तो दस जगह मुंह मारता है - बीहन छींटे फिरता है खेते-खेत. ई तो माय है जै खेत में बीज धारण कर फसल पैदा करे है. भर मोर फार्म! अभी कर आपन सैन ई पर! काहै इ रकम ताक रहल है रे मोर तरफ? भर साले, नहीं तो आज टांगी फैसला कर देतै. जांचो कर लेगी मोर टांगी"[10]. मेरी दृष्टि में सीता करोड़ों महिलाओं के लिए अनुकरणीय है और उनके लिए यह एक रास्ता दिखाती है.

सीता दूरदृष्टा है. मजदूरों का हक सुरक्षित रहे - इसके लिए वह आगे की सोचती है. औरत के बदले औरत को नौकरी देने पर लगी रोक को हटाना, पहली औरत के

रहते दूसरी औरत को लाने वाले मर्द को नौकरी से हटाना, उसकी नौकरी पत्नी को दिलाना, बच्चों के देख-रेख की व्यवस्था करना आदि मांगों के लिए सीता सोचती रहती है, "काहे नहीं एक बार सभै औरतवन के जुटा के रांची जाय के घेरल जाय सीएमडी के, औरतवन के बदले औरत के ही नौकरी देवे पर लगल रोक को हटावे खातर. पहलकी के रहते दूसर डौकी लाये वाले मर्द के नौकरी से हटाय खातर, उकर नौकरी उकर डौकी को दिलावल जाय के खातर, बचवन के देख-रेख के खातिर, काम के टैम में दाई-नर्स के इंतजाम करे की मांग रखल जाय"[11]. उसे विश्वास है कि एक दिन उसका ही नहीं, उन सभी का आयेगा, जो अभी अलग-अलग, अकेले-अकेले जाने कहां-कहां, किस-किससे कैसे लड़ रही हैं और बनती जा रही हैं एक जमातें, एक कतार, एक पांत, एक श्रृंखला, एक कड़ी. वह अपने को उन लड़ने वालों की कतार में सबसे आगे खड़ी देखती है. कुल मिलाकर, अपनी महानता में सीता मैना है.

सांप्रदायिक सौहार्द्र के लिए काम करते हुए अक्सर पुरुष को देखा गया है, स्त्री को नहीं. लेकिन स्त्री पहली बार सांप्रदायिक सौहार्द्र के लिए काम करती हुई दिखाई देती है. दिकू नेता और कुछ आदिवासी नेता मिलकर मजदूरों के बीच साम्प्रदायिक रंग फैलाकर उनकी एकता को बिखरा देना चाहते हैं. ठेकेदार-मुंशी हिंदू-मुसलमान की बात करते हैं. वे हिंदुओं को मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों को हिंदुओं के खिलाफ भड़काते हैं. इसी बीच जुम्मन और बेलमति के बीच चल रहा प्रेम-प्रसंग आग में घी का काम करता है. लेकिन सीता श्रमिकों को चुगलों और विरोधियों के स्वार्थ से अवगत कराती है. वह यूनियन से जुम्मन का इस्तीफा दिलवा देती है और इस तरह यूनियन को टूटने से बचा लेती है. मजदूरों के बीच साम्प्रदायिक तनाव बनने के पहले ही सीता उसे समाप्त करवा देती है. इस तरह वह दोनों कौमों के श्रमिकों की चहेती-नेत्री बन जाती है.

श्रमिकाएं जान चुकी हैं कि स्त्री जब तक देह से ऊपर नहीं उठेंगी तब तक वे मुक्त नहीं हो पायेंगी. 'आवां' की महिलाएं जानती हैं कि उन्हें यदि मुक्त होना है तो तमाम बनी-बनायी धारणाओं और वर्जनाओं को तोड़ना ही होगा. देह से ऊपर उठकर ही कोई स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व का निर्माण कर सकती है. हर्षा को ऐतराज है कि पुरुष हर जगह तमगा पहनने के लिए छाती फुलाकर खड़ा हो जाता है. नमिता उसे बताती है कि स्त्री को बोल्ड होना होगा. वह जब तक छुईमुई बनी रहेगी तब तक पुरुष तमगा लेता ही रहेगा. इसलिए जरूरी है कि स्त्री को हर जगह बोल्ड होना होगा. पुरुषों के साथ तनकर खड़े होने के लिए स्त्री को कठोर से कठोर अनुभवों से गुजरना ही होगा और इसके लिए स्त्री की अपनी देह ही रोड़ा बन जाती है. देह को लेकर अंतर्व्यास रूढ़ि से मुक्त होने का सबसे कारगर उपाय है कि उसे चर्चा का विषय बना लिया जाये. गौतमी यही करती है. हैदराबाद की स्थिति है कि सौ में से पांच लड़की स्वतंत्र यौन-संबंधों में अपना वजूद तलाशती है. दरअसल, स्त्री की आत्मनिर्भरता के लिए उसे स्वतंत्र होना जरूरी है, ठीक वैसे ही जैसे विमला बेन. वही समाज को कुछ दे सकता है. बंधनों में बंधी स्त्री किसी को कुछ नहीं दे सकती. नमिता भी विमला बेन की राह चल पड़ती है.

स्त्री श्रमिक-यूनियन रुपी विषधर के मुंह में ऊंगली देना सीख गई है. ऐसा करके नमिता पुरुष के क्षेत्र में सेंध लगा देती है. वह असंभव को संभव बना डालती है. पवार नमिता को महिला श्रमिकों का अगुआ बनने की सलाह देता है, "घर-घर जाकर उन्हें चेतना-संपन्न बनाना होगा, ताकि वे चेत सकें. स्वयं के संग होनेवाले भेद-भावपूर्ण व्यवहार और शोषण के प्रतिवाद में आवाज उठा सकें. उस षड्यंत्र को समझ सकें कि किस चतुराई से उनमें से ही किसी एक को बहला-फुसला, गोद में बैठा, प्रबंधन उनकी संगठनात्मक शक्ति में सेंध लगा, उन्हें एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर देता है. कूटनीति है प्रबंधन की - स्त्री कामगार हो या पुरुष, भीतरघाती पैदा करो.

पूंछ सहलाओ उसकी; छोड़ दो कटहे कुत्ते-सा. वह अपने लोगों को ही चबाता फिरेगा"[12]. नमिता मजदूर यूनियन के बीहड़ क्षेत्र में प्रवेश करती है और सफल होती है. वह सिद्ध कर देती है कि दिली इच्छा-शक्ति हो तो कुछ भी संभव है. स्त्री सब कुछ कर सकती है.

मय्यत को कंधा देना स्त्री का काम नहीं है, लेकिन 'आवां' की महिलाएं ऐसा कर एक नई शुरुआत करती हैं. सुनन्दा की मय्यत को कंधा देने का काम पहली बार विमला बने करती है. उसके बाद एक-एक कर अनेक महिलाएं कंधा देती हैं. पुरुष औरतों को रोकते रह जाते हैं कि मय्यत को कंधा देना स्त्री के लिए शास्त्र-सम्मत नहीं है. लेकिन उनकी बातों का स्त्रियों पर कोई असर नहीं होता. निर्दोष स्त्री की नृशंस हत्या करना शास्त्र-सम्मत नहीं है, तो स्त्री को कंधा देना भी शास्त्र-विरुद्ध नहीं है. विमला बेन चोट खायी शेरनी-सी दहाड़ती है, "मैं कंधा किसी औरत की मय्यत को नहीं दे रही, उस स्त्री-चेतना को दे रही हूं जिसका गला घोंटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई है! मैं हर जाति, धर्म, वर्ण की स्त्रियों का आह्वान करती हूं कि वे सबकी सब श्मशान चलें और बारी-बारी से सुनन्दा की मय्यत को कंधा दें"[13]. उसकी बातों का असर जादू की तरह होता है. औरतें शव को खुद ढोती हैं और खुद मुखाग्नि देकर भस्मीभूत करती हैं. यह पुरुषों की नृशंसता के विरुद्ध स्त्रियों के आक्रोश की प्रबल अभिव्यक्ति है. नमिता अभावों की बिलबिलाहट से दूर छद्म हत्याओं और भीतरघातों से परे व्यवस्था के खिलाफ लड़ने का संकल्प करती है. यही संकल्प बेड़ियों से मुक्ति के लिए जरूरी है.

पैसा पावर है. वैसे, हमारे यहां स्त्रियों को लक्ष्मी कहा गया है, लेकिन उसे लक्ष्मी से सदा दूर रखा गया है. सच तो यह है कि उसे लक्ष्मी नाम देकर उसका उपहास किया गया है. नमिता जानती है कि स्त्रियों को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाये बिना पुरुषों से मुकाबला सम्भव नहीं. पुरुषों के वर्चस्व से मुक्ति पाने के लिए स्त्री को नौकरीशुदा और पैसे वाली होना बहुत जरूरी है. पैसे से ही आत्मविश्वास मजबूत होता है. पैसे की ताकत मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है. पैसे की ताकत से एक बुद्धिहीन, अपाहिज, असमर्थ व्यक्ति बुद्धिमान का मस्तिष्क और सबल की शक्ति खरीद, बड़ी आसानी से अपने हितों के लिए उसका उपयोग कर समाज और संसार का सर्वाधिक समर्थ व्यक्ति बन सकता है. पैसे से ही सत्ताधारी बन प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है. पैसे से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है. इसीलिए नमिता पैसे की ओर उन्मुख होती है. जो लड़की समाज में अपना भार खुद वहन करने में सक्षम न हो पायी हो, उसके लिए अस्तित्व का पर्याय कुछ भी नहीं है. वह बिना कुछ किये अपने बच्चे को वह सब नहीं दे सकती, जिसकी उसे अपेक्षा होती है. पैसा रूपी पावर को हासिल किये बिना स्वतंत्रता का अहसास नहीं किया जा सकता.

स्त्री का अपना देह अभिशाप नहीं बल्कि एक वरदान है. देह की आनुपातिकता में कमी को दूर कर लेना अश्लीलता नहीं है. दरअसल, स्त्री के अस्तित्व का तिलिस्म उसकी देह से ही उपजती है. उन्नत उरोज उसके खूबसूरत व्यक्तित्व को चमत्कारी आत्मसुदृढ़ता प्रदान करते हैं. आभूषणों का शिल्प स्त्री-देह के तिलिस्म का ही शिल्प है. आभूषण उद्योग में काम करते हुए नमिता खुद को काम की प्रतिमूर्ति बनाती है और महसूस करती है कि वह श्रेष्ठि-पत्नी या कोई क्षत्राणी या देवदासी है. आभूषणों का सम्मोहन देखने वालों के सिर तभी चढ़कर बोलता है, जब उन्हें धारण करने वाली स्त्री अपनी देह के जादुई स्पर्श से उन्हें जागृत कर ले. उन्हें पहनते हुए वह लावण्यमयी अंतर्लीन हो, स्वयं से तिरोहित, सदियों पूर्व की महारानियों, देवदासियों, श्रेष्ठि-पत्नियों, गृहिणियों में परकाया-प्रवेश कर जब उस काल में जा खड़ी होती है, तो हमारी आंखों के सामने वह कालखंड अपनी कला-संस्कृति के वैभव के साथ

पुनर्प्रतिष्ठित हो उठता है. नमिता की दृष्टि में वह मां बनकर आत्मनिर्भर नहीं रह सकती.

कामसुख के लिए अब पुरुष की आवश्यकता नहीं रही. स्त्रियों के लिए ऐसे आधुनिक तरीके और क्लब बन गये हैं, जहां पैसे पर सब कुछ उपलब्ध है. ममता, स्मिता, गौतमी सान्याल, अंजना वासवानी, विमला बेन, निर्मला कनोई आदि महिलाएँ इसकी खूब मजा उठाती हैं. दरअसल, स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रतिहिंसा परस्पर इस सीमा तक खिंच गई है कि स्त्रियों ने एकजुट हो स्त्रियों के संग रहने की ठान ली है. ऐसे में, स्त्री-पुरुष सहयोग की बात बेमानी हो गई है. वे अब अपनी प्रकृति की उपेक्षा नहीं कर सकतीं. कामसुख के विकसित विभिन्न तरीके अतृप्ति के परिणाम हैं. बूढी विमला बेन को आज भी यौनानन्द से परहेज नहीं है. उसके बंगले पर गोद ली गई श्रमिक कुंवारियों का जमघट लगा रहता है. गौतमी का पति अशोक उसके लिए फ्रिज या अलमारी की तरह है. घर उसका है, अशोक को रहना है तो रहे या छोड़कर चला जाये. वह पति को आधिकारिक बलात्कारी समझती है. उसने अशोक को उस अधिकार से वंचित रखा है कि जब मन किया, बीवी सो रही हो, जाग रही हो, काम में व्यस्त हो, मरजी हो, न हो - उठाकर बिस्तर पर पटक लिया. निर्मला कनोई ओबेराय के 'मार्टिना' में जाती है. वहां चीनी लड़कियां टंग का उपयोग करती हैं. वह संजय कनोई की परवाह तिल-भर भी नहीं करती. नीलम्मा अपनी व्यापारी मालकिन शैलजा को देह मालिश करते-करते उसे यौन-सुख भी देने लगी है. अब उसकी सहेली मालिनी दुगने मेहनताना देकर नीलम्मा को अपने घर ले जाती है और उससे असीम कामसुख लूटती है. दरअसल, औरत की देह को औरत ही पहचानती है, पुरुष नहीं. ऐसे में, अब पुरुष की कोई जरूरत नहीं रही.

डर निकालकर कोई भी कुछ भी हासिल कर सकता है. 'कामगार आघाड़ी' की महिलाएं 'जागो री' की तर्ज पर भी काम करना शुरू करती हैं. देह-व्यापार में लिप्त महिलाएँ इनके प्रयासों से अब मिलों में काम कर स्वस्थ जीवन-यापन करने लगी हैं. 'जयहिंद आयल मिल' में छ-सात महिलाएं काम करने जाती हैं. दरअसल, उनके भीतर एक सोच तैयार करने की जरूरत है. भीतर घर किये बैठे संशयों का निवारण जरूरी है. अभी भी उनके मन से डर नहीं निकला है. इस डर को निकालने का काम उन्हीं के बीच से निकलकर आई महिलाएं करती हैं. वेश्याओं की दयनीय स्थिति ऐसी है कि विवशता में उन्हें ग्राहक से मोल-भाव भी करने की हिम्मत नहीं होती. पहले ग्राहक को खुश करती हैं, फिर गाहक चलते समय उन्हें एक या दो रुपये पकड़ाकर चलात बनता है. लेकिन इनके प्रयास से दुनिया के इस बड़े व्यवसाय में लगी महिलाएं अब स्वस्थ-जीवन जीने लगी हैं.

'मैं अकेला ही चला था मंजिल की तरफ जानिब, लोग आते गए और कारवां बनता चला गया' (जवाहरलाल नेहरू). 'जोदि तोर डाक सुने केऊ ना आसे तोबे तुमी एकला चोलो रे, एकला चोलो रे' (रवींद्रनाथ टैगोर). जिसने इन विद्वानों की इन पंक्तियों का राज जान लिया और अमल कर लिया वह अपना जन्म सार्थक कर लिया. नमिता दब-कुचले लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए उन्हीं में जा मिलती है और एक आवाज बनकर सबको दिशा देने लगती है. उसके संघर्ष के प्रेरणाश्रोत पाश हैं, जिनकी कविता उसे प्रेरित करती है, 'हम लड़ेंगे साथी / उदास मौसम के खिलाफ'. कविता की ये पंक्तियां उसे फौलादी बनाती है, "उठो! उठकर चलो. उदास मौसम के खिलाफ....जो अपने से लड़ सकता है, वही उनसे लड़ सकता है, जिन्होंने उजाले पर कालिख पोतने के लिए अपने हाथों को काला कर लिया है"[14]. ऐसे कम ही लोग होते हैं, जो ह्रदय की आंच को आवां का रूप देते हैं. नीलम्मा उसे तत्क्षण निर्णय लेने की प्रेरणा और साहस दोनों देती है. नीलम्मा माड़-भात खाकर भी सम्मान और गर्व के साथ जीती है. नमिता व्यवस्था परिवर्तन के लिए कटिबद्ध हो जाती है. वह

पुरुष-सत्ता के खिलाफ खड़ी होकर महिला श्रमिकाओं को नई और गर्वोन्नत दिशा देती है.

निष्कर्ष - शोषित-श्रमिक महिलाओं को इन राहों पर चलकर बहुत कुछ हासिल करना आसान हो गया है. इतिहास से सबक लेकर वर्तमान को सुखद बनाया जा सकता है. जिन लोगों ने ऐसा किया वे इतिहास में अमर हो गये और जो ऐसा करेंगे उन्हें भी इतिहास याद रखेगा. यही प्रकृति का नियम है. कबीर, रैदास और दसरथ मांझी ऐसे ही महान हस्तियों में शुमार किये जाते रहेंगे, जब तक मानवीय सभ्यता-संस्कृति कायम रहेगी. दसरथ मांझी जी का यह संवाद व्यक्ति को उसके अपने अस्तित्व से अवगत करा देता है, 'हमें भगवान की जरूरत नहीं. क्या पता भगवान को ही हमारी जरूरत है' (मांझी: दि माउंटेन मैन)! नथिंग को समथिंग में रूपांतरित करना हो तो निश्चित तौर पर ये दिशाएं बहुत कारगर हैं. दो कदम और आगे बढ़कर हालिवुड की फिल्म 'फारेस्ट गम्प' सबको जरूर देख लेना चाहिए. आधुनिक भारत के पिता और सिंबल आफ नालेज डा. बी. आर. अंबेडकर दुनिया के तमाम शोषित-दबे-कुचलों के नेता हुए. स्त्री दुनिया के सर्वाधिक दबे-कुचलों में से एक है, जिसके लिए कलियुग एक वरदान साबित हुआ है.

संदर्भ-सूची

1. धार - संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पेज - 207.
2. वही, पेज - 63.
3. वही, पेज - 126.
4. वही, पेज - 18.
5. थेरीगाथा - विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, 2011, पेज - 21.
6. मनुष्यानंद - पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', उग्र प्रकाशन, गऊघाट, मिर्जापुर, दूसरा संस्करण 1955, पेज - 208.
7. वही, पेज - 209-210.
8. वही, पेज - 190-191.
9. सीता - रमणिका गुप्ता, अनुराग प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पेज - 86.
10. वही, पेज - 62.
11. वही, पेज - 94.
12. आवां - चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पेज - 98.
13. वही, पेज - 153.
14. वही, पेज - 541.